स्वर्गभूमि भद्रवाह तथा उसकी संस्कृति

❑ मूल (डो०) डॉ० सत्यपाल 'श्रीवत्स'

हमारे भारत की विशाल संस्कृति उस सुंदर उपवन की भांति है जिसे अनेक रंग-बिरंगे फूलों की राज्य-रूपी क्यारियां सुशोभित कर रही हैं। यद्यपि हमारी विशाल संस्कृति की आत्मा प्रादेशिक संस्कृतियों में विद्यमान है, मगर प्रत्येक क्षेत्र की संस्कृति में कुछ-न-कुछ रूप में भिन्नता अवश्य दृष्टिगोचर होती है। मूलतः कारण यह है कि प्रत्येक प्रदेश की भौगोलिक, धार्मिक, ऐतिहासिक, राजनैतिक तथा सामाजिक परिस्थितियां अपनी-अपनी हैं। जिनका प्रभाव स्थानीय निवासियों के रहन-सहन, खान-पान तथा रीति-रिवाज़ों पर पड़ना स्वभाविक है। इन सब विभिन्नताओं के होते हुए भी हम एक ही संस्कृति के अभिन्न अंग हैं। हमारी इसी एकता में अनेकता की छवि को विश्वभर में सराहा जाता है। इसका मूल स्त्रोत हमारी वैदिक संस्कृति का अमर रूप है। इस संदर्भ में डॉ० इकबाल जैसे चिंतक एवं विद्वान का कथन है :-

"कुछ बात है कि हस्ती मिटती नहीं हमारी।
यूनानों मिस्र रोमान सब मिट गए जहां से,
अब तक मगर है बाकी नामोनिशां हमारा।"

हमारी इस अमर संस्कृति का अद्‌भुत चमत्कार है कि असंख्य विदेशी आक्रमणकारियों के आक्रमणों के उपरांत भी भारतीय संस्कृति जस-की-तस स्थिति में विद्यमान रही। यद्यपि यह एक स्वाभाविक-सी प्रक्रिया है कि विदेशी आक्रमणकारियों के साथ उनकी संस्कृतियों ने हमारी संस्कृति पर अनगिनत वार किए तथा उसे प्रभावित भी किया लेकिन हमारी अनंत संस्कृति के स्वरूप को परिवर्तित करने में असमर्थ रहे, बल्कि उससे कुछ अर्जित करके अपनी संस्कृतियों को संवारते ही रहे।

जब हम भारत के राज्य जम्मू-कश्मीर के पर्वतीय प्रदेश भद्रवाह की बात करते हैं तो यहां की संस्कृति में प्राचीन वैदिक संस्कृति की आत्मा झलकती प्रतीत होती है। इसी लिए विश्व प्रसिद्ध भाषा विज्ञानी डॉ० सिद्धेश्वर वर्मा ने भद्रवाह के संस्कृत विद्वान पं० गौरीशंकर भद्रवाही द्वारा वि०सं० 1995 में किए गए श्रीमद्‌भगवद गीता के अनुवाद की भूमिका में उल्लेख करते हुए लिखा है कि :-

"My investigation of Bhaderwahi has shown that it is one of the most important languages of India. In this language have been preserved words which are available only in Vedas, while in many ways. its Grammar is older than even Prakrit. Such venerable language deserves to be converted into a literature, and the glory of doing so undoubtedly comes to Pt. Gouri Shankar who for the first time in the History of India, has printed a book of high merit in this great language. Let me hope that this pioneer work will stimulate many similar works by the other authors whose mother tongue is Bhaderwahi."

डॉ० वर्मा ने भद्रवाही भाषा की एक अन्य विशेषता गिनाते हुए लिखा है कि इस भाषा में नपुंसक लिंग भी विद्यमान है जो गुजराती तथा सिंहली भाषाओं के अतिरिक्त किसी अन्य आधुनिक भाषा में उपलब्ध नहीं होता।

इस प्रदेश की 'भद्रवाह' तथा 'भलेस' दो ही तहसीलें ऐसी हैं जहां भद्रवाही भाषा बोलने वाले लोग बसते हैं जो संख्या में दो-तीन लाख के करीब हैं।

हम देखते हैं कि भद्रवाही लोगों की मातृभाषा में ही भिन्नता नहीं है बल्कि उनके रहन-सहन, खान-पान, रीति-रिवाज तथा संस्कृति भी भिन्न हैं मगर इसकी आत्मा भारतीय है। ध्यान देने योग्य तथ्य यह है कि समय-समय पर होने वाली उथल-पुथल के फलःस्वरूप इस क्षेत्र में डोगरी, कश्मीरी, कांगड़ी, किश्तवाड़ी, पोगली आदि बोलियां बोलने वाले लोग आ-आकर बसते रहे। परिणामतः उक्त भाषाओं के शब्द भद्रवाही में समाहित होते रहे लेकिन फिर भी इस भाषा ने अपना अस्तित्त्व बनाए रखा। यहां एक तथ्य स्पष्ट करना अत्यावश्यक है कि जहां भद्रवाही, भलेसी तथा पाडरी आदि बोलियां पश्चिमी पहाड़ी वर्ग की बोलियों में शामिल हैं वहीं डोगरी भाषा से भी इसका करीबी संबंध है।

भद्रवाह का नामकरण तथा प्राकृतिक छटा : स्वर्गभूमि कहलाने वाले भद्रवाह प्रदेश के भद्रकाशी, भद्राश्रम, भद्रदेश और भद्रद्वीप आदि नाम इसकी विशिष्टता तथा सुंदरता के परिचायक हैं क्योंकि संस्कृत भाषा का 'भद्र' शब्द भलाई की सूचक संज्ञा है।

शिवालिक पहाड़ियों के उत्तर-पूर्व की ओर पीर-पंचाल की शृंखला की गोद में बसा यह मनोरम प्रदेश समुद्र तल से 5520 फुट की ऊंचाई पर स्थित है। यद्यपि इस प्रदेश के अधिकतर गांव-कसबे आदि अपनी विशिष्टताओं के लिए प्रसिद्ध हैं मगर भद्रवाह तथा भलेस दो तहसील मुख्यालय अनेक सुविधाओं से सम्पन्न होने के कारण

अपना विशेष स्थान रखते हैं। देवदार, चीड़ों आदि से लदे हरे-भरे जंगल, लहलहाती सरसब्ज़ वादियां तथा सदैव बर्फ से ढकी बर्फीली चोटियां इसे स्वर्गभूमि सतुल्य बनाने में विशेष भूमिका निभाती हैं। इस प्रदेश की प्राकृतिक सुंदरता तथा शांत वातावरण के अनुरूप ही यहां के लोगों में माधुर्य, धैर्य तथा भलमानसिकता आदि गुणों का आधिक्य मिलता है।

भद्रवाही लोग, लोकवार्ता तथा लोक संस्कृति : किसी राज्य की लोक-संस्कृति पर क्षेत्रीय संस्कृति, ऐतिहासिक तथा धार्मिक परिस्थितियों एवं मिथकों का प्रभाव पड़ना अवश्यमभावी है अर्थात् ऐसा कहा जा सकता है कि उक्त परिस्थितियों के बीच लोकवार्ता अथवा लोक-संस्कृति में विद्यमान रहते हैं। इसलिए जब हम भद्रवाह की संस्कृति के संदर्भ में चर्चा करते हैं तो वहां के लोकवार्ता के विशाल भंडार की अन्वेषणा करना अत्यावश्यक हो जाता है।

लोक साहित्य विज्ञानी डॉ० सत्येन्द्र के कथनानुसार लोकवार्ता का हमारे जीवन के साथ आदान-प्रदान होता रहता है।

पर्वतीय प्रदेशों में जन-साधारण प्रायः अनपढ़ ही होता है लेकिन उनकी संवेदना, कल्पनाशक्ति तथा बोधशक्ति किसी भी सुशिक्षित इंसान से कतिपय कम नहीं होती। यही कारण है कि प्रकृति के रमणीक स्थलों में बसने वाले यह लोग जब किसी हृदयस्पर्शी दृश्य को देखते हैं तो उनका संवेदनशील मन स्वतः ही पुकार उठता है। फलःस्वरूप जिस साहित्य का सृजन होता है उसमें विरह एवं प्रणय गीत, अदृश्य आलौकिक शक्तियों के प्रति संबोधन गीत तथा प्राकृतिक एवं ऋतु संबंधी गीत शामिल हैं। इसी तरह लोक कथाकार धार्मिक विश्वासों, मिथकों तथा दंतकथाओं के आधार पर लोक कथाओं का सृजन करता है। यूं ही लोकवार्ता की अन्य विधाओं का जन्म भी किसी-न-किसी प्रेरणा स्वरूप होता रहता है।

भद्रवाही लोकवार्ता के प्रादुर्भाव के उपलक्ष्य में भी कुछ ऐसे ही तत्त्वों का संयोग रहा होगा। गत दिनों डॉ० प्रियतम कृष्ण कौल के - 'पर्वतों के उस पार' शीर्षक के अंतर्गत लोकवार्ता पर एक महत्त्वपूर्ण रचना प्रकाशित हुई थी। उसमें विद्वान लेखक ने भद्रवाह के पर्वतीय आंचल की संस्कृति के लोकवार्ता साहित्य पर विस्तृत जानकारी उपलब्ध कराई है। उसमें लेखक ने 84 लोकगीत, 186 सुंकली गीत (लोकगीतों की एक विधा), 23 लोक कथायें, 254 कहावतें, 148 मुहावरे तथा 134 बुझारतें संकलित की हुई हैं। जिनमें भद्रवाही लोकमानस की सच्ची-सुच्ची सोच स्पष्टतया झलकती प्रतीत होती है। इन गीतों में हमें भक्ति गीत तथा गुरु वंदना आदि गीत मिलते

हैं जिनमें राम, शिव, शक्ति, नाग इत्यादि अनेकों देवी-देवताओं के प्रति अटूट आस्था की भावना दिखती है। इनके अतिरिक्त पांडवों के अज्ञातवास काल से संबंधित गीत भी उपलब्ध होते हैं जिनका रचना काल पांडवों के भद्रवाह क्षेत्र में प्रवास के दौरान माना जाता है। धार्मिक एवं मिथक संबंधी गीतों की कुछ पंक्तियां यहां उद्धृत हैं :-

(क) राम ते लछमन भत्त खाने विश्शे पानीआरी

लग्गी प्यास हे राम :

नडिएरों बिन्नों सीस घडल्लू, सीतारानी चली-

पनिहारे, हे राम!

अक पल बलगी, दुइयों बलगी, सीता रानी-

फिरी बिन आई, मेरे राम !

भावार्थ : राम और लक्ष्मण भात खाने को बैठे थे तो उन्हें प्यास लगी। सीता झट से उठी, घड़ा सिर पर उठाया और पानी लेने चली गई। राम और लक्ष्मण ने एक पल भी प्रतीक्षा की, दो पल भी, लेकिन सीता वापिस नहीं आई।

(ख) शिव महिमा संबंधी गीत :

शामी शामी शामी मेरे नीरीं नीरीं कार जी !

नीरीं नीरीं कार शामी तीं जो नमशकार जी।

नइं किए धरत शामी मेरे, नई थिए आकास जी।

धरत ते अकास शामी बने त संजोग जी।

भावार्थ : शांति प्रदान करने वाले शिव, आप निराकार हो। आप को नमस्कार हो। पहले न तो धरती थी और न ही गगन था।

मिथक : भक्ति गीतों के अतिरिक्त भद्रवाही जनमानस में प्रचलित सामाजिक गीतों में खेती-बाड़ी संबंधी गीत, विवाह गीत, बालगीत, पर्वगीत तथा प्रणय गीत आदि सम्मिलित हैं।

खेती-बाड़ी संबंधी गीत :

(क) डौले डौले डौहोलिये। डौले डौले डौहोलिये।

डौले डौले डौहोलिये। डौले डौले डौहोलिये।

भावार्थ : हम ने खेती-बाड़ी कार्य आरंभ कर दिया है। अरे, इसे भली-भांति करो।

इसे भली-भांति करो। हम किसानी का कार्य बड़े शौक से कर रहे हैं।

(ख) शावा हो शेरा (एक) - हां, हो, हां (सब)

कठि तेरो डेरो (एक) - हां, हो, हां (सब)

भाभी रुश्शोरी भोली (एक) - हां, हो, हां (सब)

भावार्थ : ऐ शेर ! आप का घर कहां है ? रात को मैं भाभी के घर था। भाभी नाराज़ हो गई थी।

लोक गाथाओं के संदर्भ में हमारा अनुमान है कि लोकमानस ने अपने परिवेश की परिस्थितियों से प्रभावित हो तथा कल्पना का पुट देकर अनेक गाथाओं की रचना की है जबकि कुछेक के रचनाक्रम में दंतकथाओं, मिथकों तथा ऐतिहासिक तत्त्वों को आधार बनाया है, तथा तृतीय श्रेणी में सत्य ऐतिहासिक घटनाओं पर आधारित लोक गाथायें आती हैं।

लोक-गाथाओं के विषय में प्रो० प्रियतम कृष्ण कौल का कथन पूर्णतया उचित जान पड़ता है कि इन का मुख्य उद्देश्य मात्र लोकरंजन है। इसके अतिरिक्त रोमांचकता, बर्बरता, विस्मयात्मका तथा सामंती युग के विश्वास, रीति-रिवाज तथा जादू-टोना आदि की भरमार इन लोक-गाथाओं में मिलती है।

भद्रवाही लोक-गाथाओं में नाग पालेरू जन्म (नागपाल का जन्म), मेला पट्ट, पीर थान, चनोतिरू दत्त, गम्भीर चंद, डन्डेरो पुहाल (डंडी गांव का गद्दी), बासकुंड और कपलासेरू (कैलाश का साधु) आदि में ऐतिहासिक और मिथक तत्त्व मिलते हैं जो इस पर्वतीय प्रदेश की सांस्कृतिक धरोहर का संपूर्ण चित्रण प्रस्तुत करते हैं।

इसी तरह भद्रवाह प्रदेश में प्रचलित कहावतों, मुहावरों तथा बुझारतों में भी इस पर्वतीय क्षेत्र की छवि झलकती है। उदाहरणार्थ :

कहावतें :

(क) अपनी गादि कोई मुश्क न शिंग्गे।

अर्थात् - अपना दोष किसी को भी नज़र नहीं आता।

(ख) अमरेरू थुकाकोरू तुतरे पेते।

अर्थात् - दूसरों के लिए गड्ढा खोदने वाला स्वयं उसमें जा गिरता है।

मुहावरे :

(क) अपने को बरों जो घून्नू।

अर्थात् - अपने बरतन में ही दूध दुहना।

(ख) एस्सन धूड़ सडनी।

अर्थात् - आंखों में धूल झोंकना।

(ग) विश्शतां उलाट फिसनू।

अर्थात् - जुबानी जमा-खर्च करना।

बुझारतें :

(क) नीली तलाई जोता खाई (दीपक)।

(ख) धारे पुड़ शाम, न बुज्जो ए, पित्तल न बुज्जो ए ट्लाम (चन्न)।

(ग) सित्तूं मकान, न खिड़की त न - रोशनदान (अंडा)।

धार्मिक जीवन : भद्रवाह प्रदेश प्राचीन काल से ही देवताओं, सिद्ध पुरुषों, यज्ञों, किन्नरों, नागों, ऋषि-मुनियों तथा अज्ञात आलौकिक शक्तियों की निवास भूमि रही है। आदिदेव भगवान महादेव, माता पार्वती तथा उनके गणों की क्रीड़ा-स्थली रही है। अगर नाग-संस्कृति की बात की जाए तो उसका प्रमुख केंद्र भद्रवाह को ही माना जाता है। वासुकि पुराण में वर्णित जानकारी के अनुसार उपरोक्त संस्कृति सदियों से यहां फलती-फूलती रही है। धार्मिक आस्था के आधार पर इस पर्वतीय आंचल की विस्तृत जानकारी यूं है :-

देव मंदिर :

(क) शिव मंदिर (गुफा मंदिर) : भद्रवाह शहर के पास बहने वाली नीरू नदी के उत्तर की तरफ शिवजी का गुफा मंदिर वहां के लोगों का प्रमुख आस्था केन्द्र है, क्योंकि भगवान शिव नीरू नदी के तट की उत्तरीय पहाड़ी की गुफा में विराजमान हैं। इसलिए शिवजी यहां गुप्तेश्वर महादेव नाम से प्रसिद्ध हैं। यहां के सभी शिव मंदिरों में उसका प्रमुख स्थान है, इसलिए भद्रवाह क्षेत्र के साथ-ही-साथ जम्मू संभाग में भी लोगों की इसके प्रति गहरी आस्था है। इस मंदिर से संबंधित कई दंत कथाएं एवं मिथक प्रचलित हैं। गुप्तेश्वर महादेव की जलहरी के पृष्ठ भाग में जो जलधारा प्रवाहित है, वह गुप्त गंगा नाम से प्रसिद्ध है। यूं पवित्र नदी नीरू के तट पर स्थित प्राकृतिक गुफा और उसमें से प्रवाहित जलधारा सदैव महादेव शिव के चरण कमल धोती रहती है। इस प्रकार के दिव्य दर्शन शायद ही कहीं ओर उपलब्ध हो पाएं।

ख) पांडवों की बावली : उपरोक्त गुफा के बाह्य भाग में एक छोटी-सी बावली

स्थित है, निकटवर्ती पहाड़ी की गुफा से निकल गुप्त गंगा की जलधारा सर्वप्रथम इस में गिरती है तदुपरांत नीरू नदी में समाहित हो जाती है। माना जाता है कि पांडवों ने अपने अज्ञातवास काल में जब अल्पकाल के लिए भद्रवाह को अपना आश्रयस्थल बनाया था तब माता कुंती के स्नान हेतु इस बावली का निर्माण किया था। इस के ऊपरी भाग में चट्टानों पर ब्राह्मी लिपी में चंद अक्षर लिखे हुए हैं जो प्रमाणित करते हैं कि गुप्तेश्वर महादेव का मंदिर, पांडवों की बावली इत्यादि पवित्र स्थान हमारे प्राचीन सांस्कृतिक धरोहर के उम्दा नमूने हैं।

बासुकी नाग मंदिर :

(क) गाठा का नाग मंदिर : इस नाग मंदिर का निर्माण भद्रवाह के राजा धीपाल ने 1634 ई० के आस-पास करवाया था। मंदिर का निर्माण मुख्यतः लकड़ी से किया गया है। अनुमान है कि इस में स्थापित नागमूर्ति भी लकड़ी की ही होगी, क्योंकि उस काल में लकड़ी के कार्य को ही चिर स्थायी समझा जाता था। सन् 1835 ई० में चम्बे के राजा चढ़त सिंह ने इस मंदिर का नवनिर्माण करवा कर एक काले पत्थर की नाग प्रतिमा स्थापित करवाई थी। इसके पृष्ठ भाग में टाकरी लिपि में जो अभिलेख लिखित है उससे सिद्ध होता है कि गाठा का नाग मंदिर सभी नाग मंदिरों में प्राचीन है। वहां लिखित अभिलेख का अनूदित रूप इस प्रकार है- "1834–35 के भाद्रमास के अष्टमी को राजा चढ़त सिंह ने इस नागमूर्ति का निर्माण करवाया था।"

श्री कृष्ण जन्माष्टकी के उपरांत आने वाली अमावस को यहां से छड़ी मुबारक कपलपन कुण्ड के समीप आयोजित किए जाने वाले धार्मिक मेले के लिए निकलती है।

(ख) भद्रवाह नगर का नाग मंदिर : इस प्राचीन मंदिर का निर्माण चम्बा के राजा चढ़त सिंह द्वारा नौमीं से दसवीं शताब्दी के दौरान करवाया गया। प्रो० प्रियतम कृष्ण कौल का अनुमान है कि जिस समय इस मंदिर का निर्माण करवाया गया था तब इसके भीतर शिव, शक्ति तथा विष्णु आदि की मूर्तियां भी स्थापित थीं लेकिन बाद में उन्हें स्थानांतरित कर दिया गया। यहां अष्टकाल वाली जलहरी में शिवलिङ्ग, महिषासुर मर्दिनी दुर्गा, लक्ष्मी तथा गरुड़ासीन विष्णु की मूर्तियां स्थापित हैं। बाद में बड़े मंदिर में आदमकद बासुकी नाग, जीमत वाहन तथा एक कोने में लघु आकार की शंखचूड़ नाग की मूर्ति भी स्थापित करवा दी गई।

इन मंदिरों की गौनी मूर्तियों के मिथक ऐतिहासिक कहानियों के स्त्रोत हमें पिशाची भाषा के गुणाढ्या नामक कवि द्वारा रचित 'बुड्ड कथा' से प्राप्त होते हैं।

सोमदेव भट्ट द्वारा इस रचना का संस्कृत में अनुवाद 'कथा सरित सागर' शीर्षक में उपलब्ध होता है तथा इस से संबंधित अन्य जानकारी हमें सातवीं शताब्दी के आरम्भ में होने वाले थानेसर (कुरुक्षेत्र) के राजा हर्षवर्धन के संस्कृत नाटक नागानंद से मिलती है। चूंकि भद्रवाह के पर्वतीय क्षेत्र में नाग संस्कृति का प्रभाव प्राचीन काल से बहुत अधिक रहा है। इसलिए वहां अनेक नाग मंदिरों का निर्माण होना स्वभाविक-सी बात है।

भद्रवाह के सभी मंदिरों में यह बड़ा मंदिर सर्वोपरि महत्त्व रखता है। इसमें स्थापित जीमूतवाहन तथा बासुकीनाग की प्रतिमायें मूर्तिकला की दृष्टि से दुर्लभ हैं। इन मूर्तियों के तथा गाठा के नागमंदिर की मूर्तियों के शिल्पी का नाम बस्तीराम था जिसके शिल्प क्षमता के सम्मान हेतु चम्बा के राजा ने उसे पंडित की उपाधि से अलंकृत किया था। काले पत्थर से निर्मित ये आदमकद मूर्तियां कलाकार की विलक्षण प्रतिभा को दर्शाती हैं।

इन नागमूर्तियों की अनूठी शिल्पकला के उपलक्ष्य में प्रो० प्रियतम कृष्ण कौल का मानना है कि यद्यपि इनको तराशने वाला शिल्पी बस्तीराम था लेकिन इन पर कश्मीर घाटी की शिल्पकला का प्रभाव स्पष्टतया झलकता है। लेकिन इस तथ्य की अनदेखी नहीं करनी चाहिए कि कोई भी निपुण कलाकार मात्र दूसरों की नकल पर नहीं रह सकता, बल्कि अपनी कलाकृती में क्षेत्रीय प्रभाव तथा मौलिकता के द्वारा ही अपनी शिल्पकला का लोहा मनवा सकता है। उनके अतिरिक्त ओड़ा, बावली, बासक-देहरा, धर्मपुरा आदि स्थानों में नाग, चंडी, शिव तथा विष्णु भगवान इत्यादि देवी-देवताओं के मंदिरों में उत्तम कला की मूर्तियां विद्यमान हैं मगर समय के कुप्रभाव के कारण तथा विदेशी आक्रमणकारियों के विध्वंसक हमलों के कारण इनमें अधिकतर को भारी क्षति पहुँची है।

(ग) देवीरी कोठी गांव की गरुड़ासीन विष्णुमूर्ति : इस अद्भुत सुंदर मूर्ति को भद्रवाह के चुराह् (चम्बा) परगना के राजा नागपाल (प्रथम) की रानी माली ने 1160 ई० में उपरोक्त गांव में एक बावली का निर्माण करवा कर उसके किनारे स्थापित करवाया। यह शिल्पकला का एक विलक्षण नमूना है। यह मूर्ति बासक देहरा की मूर्ति से मेल खाती प्रतीत होती है। इस बावली के निकट ही 1160 ई० में राजा नागपाल प्रथम ने एक शिलालेख लिखवाया था, जिसमें चम्बा के राजा ललित बर्मन ने स्वस्तुति विवरण दर्ज कराया था।

भद्रवाह के उत्तर-पश्चिम की ओर सुवारधार के ऊपर 'सुव्वा नाग' का बड़ा

प्रसिद्ध मंदिर है। इस नाग मंदिर परम्परा से ज्ञात होता है कि इस प्रदेश में प्राचीन काल से ही नाग संकृति का प्रभुत्व रहा है। वासुकि पुराण, जिसकी रचना गाठा के नाग मंदिर के किसी विद्वान पुजारी ने बहुत देर पहले की थी इसमें नाग संस्कृति का विस्तृत वर्णन किया गया है। इसके अतिरिक्त इस प्रदेश के धार्मिक, राजनैतिक, ऐतिहासिक तथा सांस्कृतिक परंपरा का भी विस्तृत जानकारी का उल्लेख मिलता है। स्व० पं० अनन्त राम शास्त्री ने इस पुराण की पाण्डुलिपि भद्रवाह से प्राप्त कर तथा जनसाधारण से सामग्री एकत्रित कर पी.एच.डी. का शोध प्रबंध तैयार किया था जो एक प्रशंसनीय योगदान है।

लक्ष्मीनारायण मंदिर : भद्रवाह प्रदेश में कथित मंदिर का विशेष महत्त्व है। चूंकि इस का निर्माण वज़ीर सोबाराम ने करवाया था। इसलिए इसे वज़ीर मंदिर के नाम से भी जाना जाता है।

उपरोक्त मंदिरों के अतिरिक्त भद्रवाह तथा आस-पास के क्षेत्रों में दुर्गा, शारिका, चंडी, भद्रकाली आदि शक्तिपीठ मंदिर, परिस्थान का शिव मंदिर तथा परनाले का शिव मंदिर इत्यादि प्रमुख धार्मिक-स्थल हैं। इनके अलावा यहां कई मस्जिदें हैं जिनमें जामा मस्जिद सर्व-प्रमुख है।

आशापति तीर्थ : भद्रवाह से लगभग 15 किलोमीटर की दूरी पर दक्षिण की ओर आशापति नामक पवित्र-स्थल है। भेजे के निवासी माधोलाल पाधा के कथनानुसार श्राद्धमास की अमावस को भद्रवाह से प्रत्येक तीसरे साल छड़ी मुबारक निकलती है जिसमें हज़ारों श्रद्धालु जुलूस की शक्ल में आशापति पहाड़ पर पहुँच कर एक विशाल जलस्रोत के किनारे श्राद्ध एवं पिंडदान करते हैं तथा उसी दिन वापिस लौट कर 'भेजा नगर' में रात गुज़ारते हैं।

कपलास कुंड (कैलाश झील) : भद्रवाह नगर से तकरीबन बीस किलोमीटर की दूरी पर दक्षिण की ओर कपलास कुंड विद्यमान है जो इस क्षेत्र के सभी धार्मिक स्थलों में से प्रमुख मान्यता केन्द्र है। यह झील समुद्र तल से 7500 फुट की ऊँचाई पर स्थित है, इसे बासकुंड नाम से भी जाना जाता है क्योंकि मान्यतानुसार इसे बासुकीनाग का निवास स्थान माना जाता है। इस झील के उत्तर की ओर बासुकीनाग की मूर्ति स्थापित है। इसके पश्चिमी ओर स्योज-धार का मैदान गुलमर्ग के समकक्ष समझा जाता है। स्योज-धार से लगभग 1.5 किलोमीटर की चढ़ाई पर शंखपदधर नामक अति सुंदर मैदान है जिसकी ऊंचाई 800 फुट के लगभग है। इसके ठीक पूर्व की ओर 1.5 किलोमीटर की दूरी पर कपलास कुंड नामक झील है। दिव्य दृश्यों से सुशोभित झील

का व्यास तीन वर्ग किलोमीटर के लगभग है। इसमें छोटे-छोटे बर्फानी तोदे रुई के फाहों की मानिंद तैरते रहते हैं। श्रीकृष्ण जन्माष्टमी के उपरांत पड़ने वाली अमावस को यहां मेला लगता है। सावन-भाद्र मास में ही यहां काफी ठंड होती है। मेले में पहुंचने के लिए यहां दो रास्ते पड़ते हैं- (क) स्योज धार की ओर से (ख) राम तुन्द की ओर से। जनसाधारण तो स्योज के रास्ते से ही यहां पहुंचता है, जबकि छड़ी मुबारक तथा श्रद्धालुजन चेले रामतुन्द वाले रास्ते से पहुंचते हैं। नाल्ठी, गाठा तथा बिलावर क्षेत्र की छड़ी यात्रा भी मेले से पूर्व रात को वहां पहुँच जाती है। भद्रवाही और आस-पास के ग्रामीणों तथा सरकार द्वारा ऐसा उम्दा प्रबंध किया जाता है कि कहीं कोई शिकायत का अवसर ही नहीं मिलता। श्रद्धालु अलाव के चारों ओर बैठकर भजन-कीर्तन करते हैं तथा नागदेवता के प्रभाव-स्वरूप आवेश में अभुआते चेलों संग रात व्यतीत करते हैं। हज़ारों की संख्या में दूर-दूर से मेले में लोग सम्मिलित होने आते हैं। अगले दिन अमावस को सुबह-सवेरे लोग झील में स्नान करके पुण्य के भागी बनते हैं।

मेले के अगले दिन गाठा वाले नाग मंदिर के समक्ष अलाव जलाकर रात-भर लोग जागरण तथा कुड्ढ (प्रादेशिक नाच) करते हुए नाग देवता को प्रसन्न करते हैं। रात्रि के अंतिम पहर में जब सूर्य की किरणें पहाड़ों के शिखरों को चूमने लगती हैं, अलाव वाले स्थान पर बचे अंगारों पर चेले उछल-कूद कर अजब दिल दहला देने वाला दृश्य प्रस्तुत करते हैं। विभिन्न विपदाओं से पीड़ित लोग अभुआते चेले से समाधान हेतु प्रश्न पूछते हैं तथा घरों में वापिस आकर मनौतियों से संबंधित कार्य करते हैं।

मेला पट्ट : नागपंचमी को सांय तकरीबन 3–4 बजे खक्खल मुहल्ले के मैदान में मेला पट्ट का आयोजन किया जाता है। यह मेला तीन दिन चलता है तथा प्रतिदिन शाम तीन से पांच बजे के बीच कुड्ढ नृत्य किया जाता है। केवल भद्रवाह अंचल में मेला पट्ट दिन के समय आयोजित किया जाता है अन्यथा प्रत्येक अवसर पर कुड्ढ नृत्य समारोह् प्रायः रात को ही आयोजित किया जाता है। रात को कुड्ढ अलाव के चारों ओर ही किया जाता है जबकि मेला पट्ट के अवसर पर आयोजित कुड्ढ में देवी का चेला एक पीतल की गागर के गले में रंग-बिरंगे रेशमी (अनसिले) कपड़े बांध कर तथा सिर पर उठाकर चक्राकार स्थिति में नाचता है। उसके चारों ओर 50–60 नर्तक जब कुड्ढ करते हैं तो ऐसा अद्भुत एवं मनोरंजग दृश्य होता है जो अपनी मिसाल अपने-आप ही है।

मेला पट्ट के आरंभ होने की भी एक विचित्र कहानी है। कहा जाता है कि

मुगल सम्राट अकबर के शासन काल में भद्रवाह नरेश नाग (तृतीय) था जो बड़ा नाग भक्त था। सम्राट अकबर के शासनकाल में अधीनस्थ राजाओं को प्रतिवर्ष उसके दरबार में उपस्थित होना अत्यावश्यक था। यह भी शाही फरमान था कि दरबार में प्रवेश करते ही प्रत्येक राजा को सिर झुका कर सलाम करना होगा। भद्रवाह के राजा नागपाल प्रथम बार जब दिल्ली दरबार में पहुंचे तो उसे नियमों से अवगत करा दिया गया। मगर जब राजा नागपाल ने दरबार में प्रवेश किया तो नियमों की अवहेलना करते हुए अपने स्थान पर जा विराजमान हुए। राजा के ऐसा करने पर अकबर तथा दरबारी जन अति क्रोधित हो उसे दंडित करने के लिए विचार-विमर्श करने लगे। तभी एक सूझवान मंत्री ने परामर्श दिया कि राजा नागपाल को एक अवसर प्रदान करना चाहिए तथा उसके लिए दरबार में प्रवेश मार्ग मुख्यद्वार की अपेक्षा एक खिड़की द्वारा किया जाए ताकि प्रवेश करते समय राजा को विवश हो कर सिर झुकाना पड़े। अगले दिन जब राजा को मुख्यद्वार की अपेक्षा खिड़की से प्रवेश करने को कहा गया तो उसने सिर झुका कर प्रवेश करने के बजाए अपने पावं को पहले अंदर किया, जिसे देख अकबर और दरबारी आग-बबूला हो गए तथा राजा को मृत्युदंड देने के बारे में सोचने लगे। लेकिन मंत्री ने सुझाव दिया कि एक बार फिर राजा को अवसर प्रदान किया जाए तथा आदेश दिया जाए कि दरबार में उपस्थित हो क्षमा-याचना करे अन्यथा मृत्युदंड भोगने के लिए तैयार हो जाए। अगली बार भी राजा नागपाल ने जब सिर की अपेक्षा पहले पांव ही भीतर किए तो दरबारियों सहित बादशाह अकबर के क्रोध का पार न रहा, अतः वे राजा को धमकाने लगे। तत्क्षण राजा की पगड़ी में से फन फैलाए एक नाग प्रकट हुआ। जिसे देख सभी उपस्थित जन भयभीत हो गए तथा नम्र निवेदन करने लगे कि कृपया प्रकट हुए नाग को पुनः अपनी पगड़ी में छुपा लें। राजा ने उनकी प्रार्थना स्वीकार कर ली। इस चमत्कारी घटना से बादशाह इतना प्रभावित हुआ कि राजा नागपाल को विभिन्न रंगों के रेशमी कपड़े तथा स्वर्ण आभूषणों से सम्मानित कर विदा किया। राजा नागपाल के साथ घटी इस अविस्मरणीय घटना की याद में प्रत्येक वर्ष मेले पट्ट का आयोजन किया जाता है।

सांस्कृतिक एवं साहित्यिक गतिविधियां : भद्रवाह के लोग जहां अपनी धार्मिक आस्थाओं के कट्टर समर्थक हैं वहीं पर अपनी संस्कृति तथा भाषा के उत्थान, साहित्य सृजन के प्रति जागरूक एवं सजग हैं। जिन के उपलक्ष्य में विवरण कुछ यूं है :-

1. **मिथक और इतिहास :** भद्रवाह के लोगों की संस्कृति एवं भाषा का बड़ा समृद्ध इतिहास है जिसका स्पष्टतया संबंध वैदिक काल से जुड़ता है। वैदिक संस्कृति

के साथ-साथ तीसरी शताब्दी में यहां नाग-संस्कृति का प्रादुर्भाव हुआ जो बाद में इतनी पनपी कि उसने संपूर्ण क्षेत्र में अपना आधिपत्य स्थापित कर लिया। इस से पूर्व यहां गंधर्व, सिद्ध, किन्नर तथा विद्याधरों का प्रभाव था। सिद्धराज जीमूतकेतु स्वयं तो बहुत बड़े शिव भक्त थे। उन्हीं दिनों गरुड़ उस क्षेत्र में आकर मनमानी करते हुए अनेक नागों को मार कर खा जाता था। अंततः एक दिन नागराज वासुकि नाग ने गरुड़ को समझाया तथा यह बात निश्चित कर दी गई कि भविष्य में गरुड़ प्रतिदिन एक ही नाग का भक्षण करेगा। कथनानुसार एक दिन जब शंखचूड़ नामक नाग की बारी आई तो उस की माता विलाप करने लगी। जिसकी दयनीय दशा को देख जूमूत-वाहन सिद्ध द्रवीभूत हो कहने लगे-माताजी ! आप दुखी मत होइए, आपके पुत्र के स्थान पर गरुड़ के पास मैं जाऊंगा। वासकुंड के समीप शंख पद्धर मैदान में शंखचूड़ के लिबास में जीमूत वाहन को जब गरुड़ खाने लगा तो उसकी एक बाजू उसकी पत्नी मलपवर्ती के आगे जा गिरी, जिसे देख वह चिल्ला-चिल्लाकर विलाप करने लगी। जब गरुड़ को इस तथ्य का भान हुआ कि जिसे वह खा रहे हैं वह नाग नहीं अपितु एक सिद्ध कुमार है तो वह ग्लानि से भर उठे तथा तत्क्षण उसका बहिष्कार कर दिया। जिसे बाद में देवी दुर्गा (भद्रकाली) ने अमृत का छिड़काव कर पुनर्जीवित कर दिया। तदपश्चात् गरुड़ ने प्रण लिया कि भविष्य में वह नाग हत्या नहीं करेगा। इस घटना के उपरांत वहां नागजाति फलने-फूलने लगी। नागजाति का राजा नागपाल (प्रथम) बड़ा प्रसिद्ध था। राजा नागपाल (द्वितीय) उससे भी अधिक प्रभावशाली हुआ, जिसने सम्राट अकबर के दरबार में चमत्कार दिखा तथा सम्मान प्राप्त कर भद्रवाह प्रदेश को विख्यात किया।

नागपाल राजाओं के उपरांत यहां अल्पकाल के लिए चम्बा नरेश का शासन रहा, तदुपरांत कुछ समय के लिए सिक्खों का तथा उसके बाद भद्रवाह डोगरा शासकों के अधीन आ गया। जहां तक भद्रवाह प्रदेश की सांस्कृतिक परम्परा का संबंध है उसका एक उज्जवल इतिहास है। यहां के मंदिरों की वास्तुकला, उनमें स्थापित मूर्तियों की शिल्पकला के अनुपम नमूने अपना विशेष महत्त्व रखते हैं। यहां की संगीत एवं नृत्यकला भी एक विशिष्ट पहचान है। यहां का लोकनृत्य कुड्ढ (देकू) तो इतना मनमोहक है कि दर्शकों को मंत्रमुग्ध कर देता है। इसके अतिरिक्त घुरेई, गोजरी, डागी, गद्दी तथा सोहाड़ी आदि लोकनाच भद्रवाह प्रदेश की संस्कृति के प्रतीक हैं।

(ख) भद्रवाही भाषा : भद्रवाह की भाषा का संबंध वैदिक संस्कृति से संबंधित माना जाता है। सुप्रसिद्ध भाषा विज्ञानी डॉ० सिद्धेश्वर वर्मा के अनुसार भद्रवाही भाषा

ने वैदिक संस्कृत के असंख्य शब्दों के अतिरिक्त संस्कृत, गुजराती तथा सिंहली भाषाओं की भांति नपुंसक लिङ्ग को अभी तक सहेज रखा है। कुछ विद्वानों का मानना है कि पहले इस भाषा की अपनी लिपि भी होती थी, मगर उसका प्रचलन बंद हो जाने के बाद देवनागरी लिपि को ही मान्यता दे दी गई।

यूं तो इस भाषा की ध्वनियां देवनागरी लिपि जैसी ही हैं मगर प्रस्तुत सात ध्वनियां उनसे भिन्न हैं :- "ट्ल, ड्ल, द्ल, चऋ, छऋ, ज़, और झ'। यह बात भी स्पष्ट करने योग्य है कि भद्रवाही 'ओ' प्रधान भाषा है।

(ग) भद्रवाह की नाग संस्कृति : जब हम इस प्रदेश के साहित्य सृजन संबंधती बात करते हैं तो हमें प्राचीन कालीन संस्कृत में रचित वासुकि पुराण शीर्षक से एक अनूठी कृति उपलब्ध होती हैं यद्यपि इस को पुराण नाम से अलंकृत किया गया है परन्तु इसमें श्लोकों की कुल संख्या 504 तक ही है। इस लिए स्पष्ट है कि यह अठारह पुराणों में से एक की भी समानता नहीं कर सकता, क्योंकि उन समस्त पुराणों का आकार इसकी अपेक्षा हर दृष्टि से विस्तृत है। लेकिन यह बात प्रशंसनीय है कि प्राचीनतम नाग संस्कृति को उजागर करने हेतु किसी संस्कृत विद्वान ने इसकी रचना की थी। सन् 1983 ई० में पं० मूलराज शास्त्री ने इसको हिन्दी में अनुदित कर जनहित में महान कार्य किया। इसके अतिरिक्त स्व० पं० अनंत राम शास्त्री जी ने बासुकी पुराणम् (समीक्षात्मकं सम्पादनम्) शीर्षक से एक शोध प्रबंध द्वारा राष्ट्रीय संस्कृत संस्थान, दिल्ली से पी.एच.डी. की उपाधि प्राप्त की। प्रो० प्रियतम कृष्ण कौल ने भी बासुकी पुराण नाम की रचना प्रकाशित करवा भद्रवाह अंचल में नाग-संस्कृति के प्रचलन को जानने संबंधी सराहनीय कार्य किया है। बासुकी पुराण के अलावा भद्रवाह के संदर्भ में 'काक भाषा शास्त्र' के बारे में भी अल्प जानकारी मिलती है लेकिन ठोस प्रमाण उपलब्ध नहीं होने के कारण विश्वास से कुछ भी कहना मुकिश्ल है।

(अ) मियां गम्भीर चंद : उपरोक्त वर्णित साहित्य के अतिरिक्त उन दिनों क्या किसी कवि या साहित्यकार ने संस्कृत भाषा या भद्रवाही बोली में कोई साहित्य सृजना की थी या नहीं, के उपलक्ष्य में कोई विशेष जानकारी उपलब्ध नहीं होती। हां सत्रहवीं शताब्दी के अंत में मियां गम्भीर चंद नामक कवि ने भद्रवाही भाषा में कविता रचना करके प्रथम कवि कहलाने का गौरव प्राप्त किया है। कवि की एक कविता की कुछेक पंक्तियां प्रस्तुत हैं :-

चम्मे मित्ती लेई-लेई, धरो तां कोल्हेरे लेई।
एन्तरयों ना मैल निस्से, बेरीएं न्हाने सेई।

(आ) पं० गौरी शंकर : भद्रवाह के संस्कृत विद्वान पं० गौरी शंकर ने सन् 1928 ई० में श्रीमद्भगवद् गीता का भद्रवाही भाषा में पद्यात्मक अनुवाद करके उल्लेखनीय कार्य किया है। इसके साथ ही उन्होंने अपनी रचना को हिन्दी में अनुवादित करके और अधिक जनोपयोगी कार्य किया। उदाहरणार्थ एक श्लोक अनुवाद सहित उद्धृत किया जा रहा है :-

संस्कृत : "नैनं छिन्दन्ति शस्त्राणि नैनं दहति पावकः।

न चैनं क्लेदयन्त्यापो न शोषयति मारुतः। श्री गीता2/23

भद्रवाही अनुवाद :

ऐस आत्माएं शस्त्र न कट्टन। पाणि न सेलन् माँए दोग्ग'ट्लट्टन।

बातें सेंइ भी एह न शुक्के। बलति अग्गमि एस नां फुक्के।।23।।

(इ) मास्टर चूनी लाल : पं० गौरी शंकर के बाद भद्रवाही भाषा में कवि मास्टर चूनी लाल का नाम आता है। इनका जन्म कुण्ठान घराने में वि. संवत् 1954 के पौष मास की 2 तारीख को हुआ था तथा देहांत 1966–67 ई० में हुआ। अपनी भाषा में काव्य सृजना करके इन्होंने अन्य कवियों के लिए मार्ग प्रशस्त किया था। यद्यपि इनका कोई काव्य संग्रह प्रकाशित नहीं हुआ, मगर फिर भी विभिन्न विषयों पर इनकी काव्य रचनाएं उपलब्ध होती हैं। उदाहरण स्वरूप प्रस्तुत काव्यांश विचारणीय है :-

नागा बासका हो।

पत इशी रेखां ढारी-ढारी, बासका-नागा बासका हो।

उची ठारी तेरी बास, तेठरो नव अहे कमलास।

नागा बासका हो।

(ई) जान मोहम्मद तिशना : इस कवि का जन्म सन् 1923 ई० को भद्रवाह के समीपवर्ती क्षेत्र कोटली गांव में हुआ। इस कवि ने भद्रवाही भाषा में कविता तथा ग़ज़ल रचना द्वारा अपनी विशेष पहचान बनाई तथा प्रथम ग़ज़लकार कहलाने का सम्मान प्राप्त किया। इनकी कविता के कुछ काव्यांश प्रस्तुत हैं :-

कवि अपनी प्रियतमा को संबोधित करते हुए कह रहा है :-

लौ शुकाते ख्याल तेरो मीं, एपूं-एपूं ज्योई जंजाल घेरो मीं।

एछी लेडिचन जताली एपूं मजामी, मने तां देनी देते पेरों मीं।।

अर्थात् : तेरी याद मुझे हमेशा परेशान करती रहती है, लेकिन इसमें कुसूर तो मेरा ही है क्योंकि इस परेशानी का कारण तो मैं खुद हूँ। जब आँखों से आंखें प्रेम की बातें करती हैं तो मुझ अपने मन का पहरा देना पड़ता है।

सन् 1983 ई० में भद्रवाह के गाठा मुहल्ले के श्री हंसराज शर्मा ने रामचरितमान्स के बालकाण्ड तथा अयोध्याकाण्ड का भद्रवाही में दोहों तथा चौपाइयों में शब्दानुवाद करके इस भाषा में एक अद्भुत कार्य किया है।

उपरोक्त रचनाकारों के अतिरिक्त पं० ईश्वर चंद, लाल चंद कवि लेखराज, पं० मुरलीधर दत्त, बाल कृष्ण चौहान, रसाजावदानी (उर्दू कवि) और उमर चंद 'हितैषी' आदि भद्रवाही भाषा के उल्लेखनीय कवि हैं। गद्य लेखकों में श्री माधो लाल पाधा, प्रो० प्रियतम कृष्ण कौल और प्रो० शिव कुमार इत्यादि प्रमुख नाम हैं। माधो लाल पाधा ने- 'भड्लाई ते भड्लाई' लघु पुस्तिका की रचना करके अपनी भाषा को समृद्ध किया है।

भद्रवाह नगर में आकाशवाणी केंद्र द्वारा भद्रवाही भाषा एवं संस्कृति को प्रचार एवं प्रसार प्राप्त हो रहा है।

भद्रवाही लोगों का सामाजिक जीवन :

(अ) भद्रवाह प्रदेश में हिन्दू, मुसलमान और अल्प संख्या में सिक्ख तथा ईसाई रहते हैं। इनके अतिरिक्त कश्मीर घाटी, हिमाचल तथा जम्मू संभाग से डोगरा लोग भी आ बसे हैं, इसलिए भद्रवाही संस्कृति पर बाह्य संस्कृति के प्रभाव स्पष्टतया लक्षित होते हैं, मगर वहां के रीति-रिवाजों, खान-पान तथा रहन-सहन पर बाहरी प्रभावों के होते हुए भी स्थानीय प्रभाव अधिक महत्त्व रखते हैं।

भद्रवाह प्रदेश अति सर्द क्षेत्र है। सर्दियों में सारा प्रदेश बर्फ की चादर से ढक जाता है, इसलिए यहां के निवासियों का मांसाहारी होना स्वाभाविक-सी बात है। निःसंदेह इसके अपवाद भी मिलते हैं। शायद इसलिए यहां देव-स्थलों पर बलि प्रथा का प्रचलन आम है। इतना ही नहीं बल्कि शराब नोशी भी साधारण-सी बात है। इस क्षेत्र के संदर्भ में यह तथ्य प्रशंसनीय है कि साक्षरता की दर में यहां के निवासी बहुत आगे हैं। इसीलिए इसे जम्मू संभाग का 'केरल' कह कर सुशोभित किया जाता है।

(आ) फल-सब्ज़ियां तथा खेती-बाड़ी : भद्रवाह निवासियों को अपनी मातृभूमि से अत्यधिक स्नेह है। धनवान हो या उच्च पद पर आसीन, समय निकाल खेती-कार्य करना सर्वप्रिय शौक है।

गेहूं, धान, मक्की, रौंगी, मोठ, माश, राजमाश, मूंग आदि यहां की प्रमुख पैदावार है। फलों में सेब, नाशपाती, बिही, अखरोट तथा अमलूक प्रसिद्ध हैं। फलाहार पदार्थों में रामदाना, बजरभोंग तथा फाफड़ा गिने जा सकते हैं। गांठगोभी, पालक, सरसों, गुच्छियां, कुक्करमुत्ता, कसरोड़ (पहाड़ी सब्ज़ी) आदि सब्ज़ियां प्रचुर मात्रा में उगती हैं।

भद्रवाह अंचल को अगर वनस्पतियों तथा हरे-भरे वनों का घर कहा जाए तो अतिश्योक्ति नहीं होगी। जड़ी-बूटियों में कुछेक उपयोगी नाम यूं हैं- धूफ, गुग्गल, कुट्ठ, फेगू, छगक, नच्चन, चकरू, नीलकंठी, भांग, कीहर, कोंड़, जीवनी, पतीश तथा गू आदि। पेड़ों में देवदार, चीड़, मेरू, पड़तल और बांस आदि प्रमुख हैं। जिन के कारण इस प्रदेश का सौंदर्य उसे स्वीट्ज़रलैंड तथा विश्व के अति सुंदर देशों की श्रेणी में ला खड़ा करता है। इसलिए इसे स्वर्गभूमि कहलाने का गौरव प्राप्त है। भद्रवाह के उत्तर-पश्चिम में चिन्ता और जई इतने रमणीक स्थल हैं कि अगर उन्हें पर्यटन की दृष्टि से विकसित किया जाए तो हज़ारों-लाखों पर्यटक यहां आकर प्राकृतिक सौंदर्य का आनंद उठा सकते हैं जिससे यहां के निवासियों की आर्थिक स्थिति में सुधार लाया जा सकता है।

उपरोक्त सर्वेक्षण से इस पर्वतीय प्रदेश के धार्मिक, सांस्कृतिक, राजनैतिक तथा सामाजिक जीवन की झलक मात्र ही प्रस्तुत की जा सकी है। ऐसा प्रस्तुत लेख की सीमा को ध्यान कर किया गया है अन्यथा इस स्वर्गभूमि सतुल्य प्रदेश को शब्दों में बांधना अति दुष्कर कार्य होगा।

संदर्भ सूची :-

1. डॉ० जितेन्द्र उधमपुरी : डोगरी साहित्य दा इतिहास जे० एण्ड के० स्टेट बोर्ड ऑफ स्कूल एजुकेशन, 1958।
2. माधो लाल पाधा, भद्रवाही भड़लाहत भड़लाई। - भड़लाई संस्था भद्रवाह, 1979।
3. भद्रवाही बालपोथी - भद्रवाही भड़लाहत भड़्लाई।
4. पं० मूल राज शास्त्री- वासुकि पुराण - हिन्दी अनुवाद प्रकाशक - पं० धर्मराज शर्मा, गाठा (भद्रवाह) 1983।
5. पं० गौरी शंकर - भद्रवाही में श्रीमदभगद्गीता, 1995।
6. प्रो० प्रियतम कृष्ण कौल - पर्वतों के उस पार।

7. श्री पी०के० कौल गुप्तेश्वर महादेव (भद्रवाह)।
8. प्रो० पी०के० कौल वासुकि टेंपल।
9. पं० हंस राज शर्मा - रामायण, भद्रवाही भाषा (बाल तथा अयोध्या कांड) 1983।
10. शाहिन (पत्रिका गर्वनमैंट कॉलेज भद्रवाह) 1970–71।
11. हमारा साहित्य (2003), जम्मू-कश्मीर कला, संस्कृति एवं भाषा अकैडमी, जम्मू।

अनु० अज़रा चौधरी